[2024] 1 एस सी आर 374: 2024 आईएनएससी 28

अलगम्मल एवं अन्य

बनाम

गणेशन एवं अन्य

(2009 की दीवानी अपील संख्या 8185)

10 जनवरी, 2024

[विक्रम नाथ और अहसानुद्दीन अमानुल्लाह *, न्यायमूर्तिगण]

विचार के लिए मुद्दा

यह देखना आवश्यक है कि विक्रेता और क्रेता के बीच हुए विक्रय अनुबन्ध में कहीं यह साफ़-साफ़ लिखा है या नहीं कि क्रेता को पूरा भुगतान कितने समय के भीतर करना है। अर्थात्, क्या अनुबन्ध के भूमिका में कोई निश्चित समय-सीमा बताई गई है जिसके भीतर क्रेता को संपूर्ण राशि चुका देनी चाहिए।

निर्णय सार

विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 – अनुबन्ध का विशिष्टपालन – अनुबन्ध में समय का महत्त्व (क्या समय अनुबन्ध का मूल तत्व था) – विक्रेता और क्रेता ने 22.11.1990 को पंजीकृत विक्रय अनुबन्ध किया, जिसकी मूल्य राशि रुपये 21,000/- थी – विक्रेता द्वारा रुपये 3,000/- अग्रिम रूप से प्राप्त किए गए और यह लेन-देन छह माह के भीतर पूर्ण किया जाना था – तथापि, 05.11.1997 को विक्रेता ने उक्त विवादित संपत्ति के संबंध में रुपये 22,000/- के परिमाण पर किसी तृतीय व्यक्ति के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित कर दिया – इसके उपरान्त क्रेता द्वारा विक्रेता को अनुबन्ध का पालन करने हेतु नोटिस प्रेषित किया गया – तत्पश्चात् क्रेता ने विक्रेता के विरुद्ध अनुबन्ध के विशिष्टपालन, क्षतिपूर्ति तथा ब्याज सहित राशि की वसूली हेतु वाद दायर किया – वाद की अस्वीकृति – प्रथम अपीलीय

न्यायालय द्वारा पारित आदेश में वाद स्वीकार कर लिया गया तथा उच्च न्यायालय द्वारा भी उक्त निर्णय की पुष्टि कर दी गई – क्या यह निर्णय विधिसम्मत है:

अभिनिर्धारितः निर्धारित छह माह की अवधि के भीतर क्रेता पर यह दायित्व विद्यमान था कि वह विक्रेता को शेष संपूर्ण राशि का भुगतान कर दे – क्रेता द्वारा प्रेषित नोटिस में दर्शाए अनुसार रुपये 21,000/- में से केवल रुपये 7,000/- का ही भुगतान किए जाने से यह स्पष्ट है कि क्रेता ने निर्धारित छह माह की अवधि में अपने अनुबन्धीय दायित्व का पालन नहीं किया तथा न ही उन्होंने उक्त अवधि समाप्त होने से पूर्व शेष राशि का भुगतान करने का कोई प्रस्ताव प्रस्तुत किया – विक्रेता द्वारा 21.04.1997 को रुपये 1,000/- प्राप्त किए जाने का उल्लेख, जो कि तृतीय व्यक्ति के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित किए जाने के उपरान्त का है, तथा इस तथ्य के साथ कि फोरेंसिक विशेषज्ञ ने यह पाया कि समय-सीमा के उपरान्त भुगतान स्वीकार किए जाने के आधार पर दर्शाए गए दोनों अंगूठा-निशान विक्रेता के वास्तविक अंगूठा-निशानों से मेल नहीं खाते, यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि समय-सीमा का कोई विस्तार नहीं हुआ था; फलस्वरूप 1963 अधिनियम के अन्तर्गत क्रेता के पक्ष में कोई प्रवर्तनीय अधिकार उत्पन्न नहीं हुआ – यदि यह मान भी लिया जाए कि विक्रेता ने समय-सीमा समाप्त होने के पश्चात् क्रेता से धन स्वीकार किया था, जिसका परीक्षण न्यायालय, प्रथम अपीलीय अथवा द्वितीय अपीलीय स्तरों पर भी निर्णायक रूप से सिद्ध नहीं हुआ, तब क्रेता के लिए उपलब्ध उपाय केवल इतना था कि वह चुकाए गए धन की वापसी तथा क्षतिपूर्ति अथवा ब्याज के रूप में हानि-पूर्ति का दावा करे; परन्तु विक्रय विलेख के निष्पादन हेतु विशिष्टपालन का वाद उपलब्ध नहीं था – इसके अतिरिक्त, यद्यपि तृतीय व्यक्ति को वाद में प्रतिवादी (उत्तरदाता) बनाया गया था, तथापि उसके विक्रय विलेख की निरस्तीकरण संबंधी कोई अनुतोष नहीं मांगी गई – यहाँ तक कि यदि क्रेता द्वारा किए गए बाद के भुगतानों के कथन को स्वीकार भी कर

लिया जाए, तो भी वे अत्यधिक अन्तराल पर किए गए थे और उन्होंने न तो शेष राशि चुकाने की तत्परता प्रदर्शित की और न ही आवश्यक मुद्रांक पत्र तैयार कराकर विक्रय विलेख निष्पादित कराने हेतु कोई नोटिस दिया; अतः पक्षकारों के आचरण, विशेषकर विक्रेता के आचरण के परीक्षण के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि समय अनुबन्ध का मूल तत्व नहीं था – परिणामस्वरूप उच्च न्यायालय तथा प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय निरस्त किए जाते हैं और विचारण न्यायालय का निर्णय पुनः स्थापित किया जाता है। [अनुच्छेद 24 से 26, 28 से 30]

न्यायदृष्टांत

के. एस. विद्यनादम बनाम वैरावन, **[1997] 1 एस. सी. आर. 993 : (1997) 3 एस. सी. सी. 1;** *गोधरा इलेक्ट्रिसिटी कम्पनी लिमिटेड बनाम गुजरात राज्य,* **[1975] 2 एस. सी. आर. 42 : (1975) 1 एस. सी. सी. 199 – संदर्भित।**

हर मैजेस्टी के राजस्व तथा शुल्कों के आयुक्तगण बनाम सीक्रेट होटल्स लिमिटेड (पूर्व में मेड होटल्स लिमिटेड), **[2014] यू. के. एस. सी. 16 – संदर्भित।**

उद्धृत पुस्तकें और पत्रिकाएँ

सर किम लेविसन, *अनुबंधों की व्याख्या, 7 वीं संस्करण*-**संदर्भित।**

अधिनियमों की सूची

विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963

मुख्य शब्दों की सूची

बिक्री के लिए समझौता; विशिष्ट अनुतोष; विशिष्ट प्रदर्शन; समय, अनुबंध का सार; विचार राशि; अग्रिम भुगतान; बिक्री विलेख; कानूनी सूचना; विशिष्ट प्रदर्शन के लिए सूट; स्टाम्प पेपर; फोरेंसिक विशेषज्ञ; अंगूठे की छाप; उंगलियों के निशान; लागू

करने योग्य अधिकार; उपाय; धन की वसूली; नुकसान; ब्याज; क्षतिपूर्ति; इच्छा; पक्षों का आचरण।

मामले से उद्धत

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार : 2009 की दीवानी अपील संख्या 8185

मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा 28.04.2009 को पारित 2008 की द्वितीय अपील संख्या 1127 के निर्णय एवं आदेश से।

पक्षकारों के लिए उपस्थिति

वी. प्रभाकर, सुश्री ई. आर. सुमति, सुश्री ज्योति पराशर, एन. जे. रामचन्दर, अधिवक्ता — अपीलकर्ताओं के लिए।

पी. वी. योगेश्वरन, आशीष कुमार उपाध्याय, वाई. लोकेश, वी. कन्धा प्रभु, वी. सिबि कारगिल, सुश्री मैत्री गोयल, सुश्री सोनाली पात्रा, सचिन कुमार वर्मा, सुश्री दिव्या, अधिवक्ता — उत्तरदाताओं के लिए।

सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

निर्णय

अहसानुद्दीन अमानुल्लाह, न्यायमूर्ति

पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलें सुनी गईं।

2. वर्तमान अपील 28.04.2009 दिनांकित अंतिम निर्णय (जिसे आगे "आक्षेपित निर्णय" कहा गया है) के विरुद्ध निर्देशित है, जो मदुरै पीठ, मद्रास उच्च न्यायालय (जिसे आगे "उच्च न्यायालय" कहा गया है) द्वारा पारित किया गया था, जिसके द्वारा अपीलकर्ताओं/मूल उत्तरदाताओं द्वारा दायर द्वितीय अपील [2008 की द्वितीय अपील (एमडी) संख्या 1127] को अस्वीकृत कर दिया गया।

संक्षिप्त तथ्य:

3. अपीलकर्ता संख्या 1, 2 और 3 ने उत्तरदाताओं के साथ 22.11.1990 को एक पंजीकृत विक्रय अनुबन्ध (जिसे आगे "अनुबन्ध" कहा गया है) संपादित किया था, जिसके द्वारा वाद-विवादित संपत्ति को रुपये 21,000/- के परिमाण पर विक्रय करना निर्धारित था, जिसके विरुद्ध रुपये 3,000/- अग्रिम के रूप में प्राप्त किए गए थे। आगे, इस लेन-देन को छह माह की अवधि के भीतर पूर्ण करना निश्चित किया गया था। इसी बीच, अपीलकर्ता संख्या 1, 2 और 3 ने 05.11.1997 को अपीलकर्ता संख्या 7 के पक्ष में उक्त संपत्ति के संबंध में रुपये 22,000/- के परिमाण पर एक विक्रय विलेख निष्पादित कर दिया। दिनांक 18.11.1997 को उत्तरदाताओं ने अपीलकर्ताओं को अनुबन्ध का निष्पादन करने हेतु नोटिस प्रेषित किया। इसके परिणामस्वरूप उत्तरदाताओं ने अपीलकर्ताओं के विरुद्ध अनुबन्ध के विशिष्टपालन, क्षतिपूर्ति तथा ब्याज सहित धन-वसूली हेतु मूल वाद संख्या 165/1998 मुनसिफ़, जिला न्यायालय, डिण्डिगुल के समक्ष दायर किया। यह वाद प्रधान जिला मुनसिफ़ न्यायाधीश, डिण्डिगुल द्वारा 10.09.2000 के आदेश से अस्वीकृत कर दिया गया। उत्तरदाताओं द्वारा दायर अपील संख्या ए.एस. 258/2008 प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा स्वीकार कर ली गई, और उक्त निर्णय को उच्च न्यायालय ने 28.04.2009 दिनांकित आक्षेपित निर्णय द्वारा कायम रखा।

<u>अपीलकर्ताओं द्वारा प्रस्तुतियाँ :</u>

4. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अनुबन्ध के अनुसार शेष परिमाण रुपये 18,000/- का भुगतान छह माह के भीतर किया जाना था, जो कि निर्विवाद रूप से नहीं किया गया। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि दिनांक 16.12.1990 को रुपये 1,000/-, दिनांक 15.04.1991 को रुपये 3,000/- तथा दिनांक 17.09.1991 को रुपये 2,500/- के तथाकथित उपरान्त भुगतान वास्तविक रूप से अपीलकर्ताओं को किए ही नहीं गए थे; और तर्क की दृष्टि से इन्हें स्वीकार भी

कर लिया जाए तो भी यह कथन असत्य है, क्योंकि अंगुलि-चिह्न विशेषज्ञ ने यह पाया है कि अपीलकर्ता संख्या 1 के अंगूठा-निशान, जो उक्त भुगतानों की स्वीकृति हेतु दर्शाए गए हैं, अपीलकर्ता संख्या 1 के वास्तविक स्वीकृत नमूना अंगूठा-निशान से मेल नहीं खाते। फलस्वरूप यह आधार ही समाप्त हो जाता है कि समय अनुबन्ध का मूल तत्व नहीं था। यह भी प्रस्तुत किया गया कि अनुबन्ध में यह उद्घोषित था कि यदि उत्तरदाताओं की ओर से कोई चूक होती है तो दिया गया अग्रिम धन राजसात कर लिया जाएगा और विक्रय विलेख प्राप्त करने तथा समस्त भार-मुक्त कब्जा प्राप्त करने का अधिकार भी समाप्त हो जाएगा।

5. यह प्रस्तुत किया गया कि जब किसी विशेषज्ञ द्वारा अंगुलि-चिह्न को अस्वीकृत कर दिया गया हो और ऐसी प्रतिवेदन प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत कर दी गई हो, तब जिस दस्तावेज़ पर जालसाज़ी की गई हो, उस पर आधारित दावा स्वयं ही संपूर्ण लेन-देन को विधि की दृष्टि से अग्रहणीय बना देता है। यह सुप्रतिष्ठित सिद्धान्त है कि उत्तरदाता न्यायालय के समक्ष निष्कलंक हाथों से उपस्थित नहीं हुए, क्योंकि उनका समस्त दावा एक जालसाज़ी किए गए दस्तावेज़ पर आधारित था।

6. यह प्रस्तुत किया गया कि उत्तरदाताओं का यह दावा कि उन्होंने 18.09.1992 को रुपये 3,000/-; 24.07.1996 को रुपये 1,800/-; 25.07.1996 को रुपये 1,300/- तथा 29.07.1996 को रुपये 1,000/- अर्थात् कुल रुपये 20,425/-, और अन्ततः 21.04.1997 को रुपये 1,000/- (जो कि अनुबन्ध में निर्दिष्ट राशि से रुपये 425/- अधिक है) का भुगतान किया, असत्य है।

7. विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि जब उक्त अभिलेखीय टिप्पणियों का सिद्ध होना ही नहीं हुआ, तब यह मान लेना संभव नहीं है कि उत्तरदाता तैयार और इच्छुक थे अथवा यह कि उन्होंने वास्तव में अतिरिक्त राशि का भुगतान किया था।

8. यह प्रतिवाद किया गया कि 18.11.1997 दिनांकित उत्तरदाताओं की ओर से प्रेषित विधिक नोटिस स्पष्टतः उनके अपनी ही घातक त्रुटियों को ढकने तथा एक मृत दावे को पुनर्जीवित करने—अर्थात् ऐसे अनुबन्ध को पुनः जीवित करने—का प्रयत्न था, जो समय-व्यतीत हो जाने के कारण न्यायालय के माध्यम से निष्पादित किए जाने में असमर्थ हो चुका था। इस विषय में यह प्रतिपादित किया गया कि तैयार और इच्छुक होने का कथन करना तथा उसका सिद्ध करना आवश्यक है, जो कि उत्तरदाताओं द्वारा दायर वादपत्र के कथनों से स्पष्ट है कि किया ही नहीं गया। अतः यह प्रस्तुत किया गया कि जब विचारण न्यायालय तथा प्रथम अपीलीय न्यायालय, दोनों ने ही उत्तरदाताओं की ओर से तैयार रहने और इच्छुक रहने के प्रश्न पर कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया, तब आक्षेपित निर्णय में उच्च न्यायालय द्वारा उत्तरदाताओं की तत्परता और इच्छा के संबंध में की गई टिप्पणी किसी भी आधार से रहित है।

9. विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि 1963 अधिनियम (जिसे आगे “1963 अधिनियम” कहा गया है) की धारा 16(सी) के अनुसार तैयार रहने और इच्छुक रहने का स्पष्ट रूप से उल्लेख करना और उसे सिद्ध करना अनिवार्य है, और किसी प्रकार की अनुमान-निर्मिति का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। अतः उन्होंने प्रस्तुत किया कि उत्तरदाताओं पर यह दायित्व था कि वे मुद्रांक-पत्र क्रय करें और विक्रय विलेख का प्रारूप तैयार करें, जिसका कोई उल्लेख वादपत्र में नहीं है। यह स्पष्टतः दर्शाता है कि अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार अपने दायित्वों का पालन करने के लिए न तो तत्परता थी और न ही इच्छा।

10. विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अभिलेखीय टिप्पणियों में अंकित अंगूठा-निशान न तो मेल खाते पाए गए हैं और न ही समान पाए गए हैं, जैसा कि अंगुलि-चिह्न विशेषज्ञ की प्रतिवेदन में उल्लेखित है, जिसका संदर्भ प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय में किया गया है।

11. विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा प्रदत्त तथा उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि किए गए निर्णय के अनुसार 17.09.1991 को किए गए और अभिलिखित अंतिम भुगतान को स्वीकार कर लिया गया है। अतः इस तिथि से तीन /की अवधि 16.09.1994 को समाप्त हो जाती, जबकि वाद 23.03.1998 को ही संस्थापित किया गया, जो स्पष्टतः कालावधि-निषिद्ध है।

12. यह प्रस्तुत किया गया कि विचारण न्यायालय ने यह पाया था कि अभिलेखीय टिप्प्पणियाँ समय-सीमा के विस्तार के विषय में मौन हैं, और यह निष्कर्ष न तो प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा बदला गया और न ही उच्च न्यायालय द्वारा। इस दृष्टिकोण से देखने पर अनुबन्ध के अनुसार छह माह की अवधि 21.05.1991 को समाप्त हो जाती तथा तीन /की कालावधि 22.05.1994 को समाप्त होती। इस पर विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उत्तरदाताओं का यह प्रतिवाद कि कालावधि की गणना मूल वाद संख्या 551/1992 में दिनांक 24.07.1996 को पारित निर्णय से प्रारम्भ होगी—जो अपीलकर्ता संख्या 1 द्वारा वाद-विवादित संपत्ति से अपने पति एवं सास को बेदखली तथा कब्ज़ा प्राप्ति हेतु दायर किया गया था—विधि की दृष्टि से सही परिप्रेक्ष्य नहीं है, क्योंकि मात्र कब्ज़ा न होना ही ऐसा कारण नहीं है जिससे विक्रय विलेख के निष्पादन द्वारा अपीलकर्ताओं से उत्तरदाताओं के पक्ष में स्वामित्व के अंतरण की प्रक्रिया बाधित हो जाती। अनुबन्ध का उद्देश्य केवल संबंधित संपत्ति के स्वामित्व का हस्तांतरण करना था।

13. विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि न तो मूल वाद संख्या 551 /1992 और न ही उसमें पारित निर्णय—दोनों में से किसी का भी उल्लेख—उत्तरदाताओं द्वारा मूल वाद संख्या 165/1998 में इस उद्देश्य से नहीं किया गया कि /1998 में दायर वाद हेतु उत्पन्न कारण-कार्यवाही को अनुबन्ध (जो /1990 में संपन्न हुआ था) से जोड़कर कालावधि की गणना की जा सके। आगे यह भी प्रतिपादित किया गया कि अनुबन्ध

में निर्धारित चूक-धारा के अनुसार उत्तरदाताओं पर यह दायित्व था कि वे न्यायालय के माध्यम से विक्रय विलेख तथा कब्ज़ा प्राप्त करते, और इस प्रकार उत्तरदाताओं द्वारा 18.11.1997 को प्रेषित विधिक नोटिस समय-सीमा को बढ़ा नहीं सकता, क्योंकि यह अवधि उससे काफी पूर्व ही समाप्त हो चुकी थी और इस प्रकार एकतरफ़ा रूप से नोटिस भेजना अधिनियम, 1963 की धारा 54 के अधीन विद्यमान विधिक निषेध को दूर नहीं कर सकता।

14. विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्कों का सार प्रस्तुत करते हुए प्रतिपादित किया कि किसी भी दृष्टिकोण से देखा जाए, वाद दायर किए जाने से पूर्व ही वाद-विवादित संपत्ति अपीलकर्ता संख्या 7 के पक्ष में पंजीकृत विक्रय विलेख के अंतर्गत विक्रय की जा चुकी थी, और जब अपीलकर्ता संख्या 7 के पक्ष में संपादित उक्त विक्रय विलेख को चुनौती ही नहीं दी गई, तब विशिष्टपालन का वाद अनिवार्य रूप से अस्वीकृत किया जाना चाहिए था।

15. विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के निर्णय ***के. एस. विद्यनादम बनाम वैरावन,* (1997) 3 एस. सी. सी. 1**, के अनुच्छेद 10, 11 तथा 13 पर आश्रय किया, इस प्रतिपादित सिद्धान्त के समर्थन में कि भारत में न्यायालयों ने निरन्तर यह माना है कि अचल संपत्ति से सम्बन्धित विक्रय अनुबन्ध के मामलों में, जब तक अनुबन्ध में विशेषतः ऐसा उल्लेख न हो, समय अनुबन्ध का मूल तत्व नहीं होता; और यह कि वाद दायर करने हेतु अधिनियम द्वारा निर्धारित कालावधि 3 /की है।

16. यह प्रतिवाद किया गया कि उपरोक्त निर्णय में अनुबन्ध की शर्तें वर्तमान अनुबन्ध के समान थीं, क्योंकि भवन में किसी किरायेदार का कोई उल्लेख नहीं था और यह स्पष्ट किया गया था कि छह माह के भीतर वादी को मुद्रांक-पत्र क्रय कर शेष परिमाण का भुगतान करना होगा, जिसके उपरान्त प्रतिवादी उसके नाम अथवा उसके द्वारा प्रस्तावित नामों पर उप-पंजीयक के समक्ष विक्रय विलेख निष्पादित करेंगे। पुनः यह

प्रतिपादित किया गया कि वादकर्ताओं (उत्तरदाताओं) की ओर से प्रतिवादियों (अपीलकर्ताओं) को विक्रय विलेख निष्पादित कराने हेतु 18.11.1997 दिनांकित विधिक नोटिस जारी होने तक कोई पूर्व पत्र अथवा नोटिस जारी नहीं किया गया था—जो 6½ /पश्चात् किया गया—और यह परिस्थिति **के. एस. विद्यनादम** (उपरोक्त) के तथ्यों से पूर्णतः समान है।

उत्तरदाताओं की ओर से प्रस्तुतियाँ

17. अपील के प्रतिवाद में, उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि 23.03.1992 को अपीलकर्ता संख्या 1 ने अपने पति, अपनी सास, अपने पति की दूसरी पत्नी तथा दूसरी पत्नी के पुत्र के विरुद्ध मूल वाद संख्या 551 /1992 दायर किया था, जिसे डिक्री प्रदान की गई। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ताओं ने अनुबन्ध में निर्दिष्ट राशि से रुपये 425/- अधिक स्वीकार करने तथा 24.07.1996 को वाद-विवादित संपत्ति के संबंध में घोषणा एवं कब्ज़ा प्राप्त करने की डिक्री मिल जाने के बाद भी विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया, जिसके कारण 18.11.1997 को उन्हें विधिक नोटिस भेजी गई। चूँकि कोई कार्यवाही नहीं की गई, इसलिए उत्तरदाता 23.03.1998 को विशिष्टपालन की मांग करते हुए वाद दायर करने के लिए विवश हुए।

18. विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रथम अपीलीय न्यायालय ने यह अभिलेखित किया था कि अपीलकर्ता संख्या 1 द्वारा अपीलकर्ता संख्या 7 के पक्ष में 05.11.1997 को निष्पादित विक्रय विलेख bona fide नहीं था, क्योंकि उक्त विक्रय उस समय संपादित किया गया जब अपीलकर्ता संख्या 1 को मूल वाद संख्या 551 /1992 में 24.07.1996 को वाद-विवादित संपत्ति के संबंध में घोषणा एवं कब्ज़ा प्राप्ति का आदेश मिल चुका था।

19. विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह प्रश्न कि अनुबन्ध में समय मूल तत्व है या नहीं—अर्थात् अनुबन्ध की प्रभावशीलता—पक्षकारों के आचरण पर भी निर्भर करता है। वर्तमान प्रकरण में, जब अपीलकर्ता संख्या 1 ने निर्धारित समय-सीमा के काफी पश्चात् धन स्वीकार किया, तब यह स्पष्ट है कि विक्रय में परिणत होने हेतु अनुबन्ध की वैधता को समाप्त नहीं माना जा सकता। क्योंकि बाद में धन स्वीकार करने से विक्रय विलेख के निष्पादन द्वारा लेन-देन पूर्ण करने के लिए निर्धारित समय-सीमा को शिथिल कर दिया गया था।

20. यह प्रतिवाद किया गया कि पक्षकारों की वास्तविक मंशा केवल विक्रय विलेख निष्पादित करना ही नहीं थी, बल्कि कब्ज़ा सौंपना भी थी, जो प्रत्येक अचल संपत्ति के विक्रय की निहित (अन्तर्निहित) शर्त होती है। अतः केवल 24.07.1996 को जब सम्बद्ध अपीलकर्ता कब्ज़ा सौंपने में सक्षम हुए, तभी से कालावधि प्रारम्भ होगी; अन्यथा यदि उत्तरदाताओं के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित भी कर दिया जाता, तो भी कब्ज़ा सौंपे जाने की क्षमता के अभाव में उसका कोई वास्तविक प्रभाव या परिणाम नहीं होता।

21. विद्वान अधिवक्ता ने प्रतिपादित किया कि अपीलकर्ताओं द्वारा यह रूख लेना कि प्रस्तावित विक्रय केवल स्वामित्व के अंतरण हेतु था, कब्ज़ा सौंपने हेतु नहीं—स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि अचल संपत्ति का विक्रय सदा ही विक्रेता से क्रेता को कब्ज़ा हस्तांतरित करने के लिए होता है, जैसा कि संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (जिसे आगे "1882 अधिनियम" कहा गया है) की धारा 5 को धारा 54 के साथ पढ़ने से स्पष्ट होता है। आगे प्रस्तुत किया गया कि 1882 अधिनियम की धारा 55(फ) विक्रेता के इस दायित्व का प्रतिपादन करती है कि वह विक्रय के समय संपत्ति का कब्ज़ा सौंपे; और यदि विक्रेता के पास अनुबन्ध-करने के समय अथवा उसके उपरान्त संपत्ति का कब्ज़ा न हो, तो यह संपत्ति में एक "महत्त्वपूर्ण दोष" होता है, जिसे 1882

अधिनियम की धारा 55(1)(क) के अनुसार विक्रय के समय क्रेता को अवश्य प्रकट किया जाना चाहिए। अतः, उनके अनुसार, विक्रय के समय कब्ज़ा सौंपना विक्रेता का दायित्व है, जैसा कि अनुबन्ध में भी निर्धारित था।

22. इस प्रश्न पर कि ऐसे अनुबन्ध में समय मूल तत्व है या नहीं, यह प्रतिवाद किया गया कि जब कोई पक्ष अनुबन्ध-निष्पादन के समय संपत्ति का कब्ज़ा सौंपने की स्थिति में न हो, तब समय को अनुबन्ध का मूल तत्व नहीं माना जा सकता, क्योंकि वाद-विवादित संपत्ति जिस व्यक्ति को विक्रय की जानी है, उसके पक्ष में वाद दायर करने का अधिकार तभी उत्पन्न होगा जब विक्रेता संपत्ति का कब्ज़ा क्रेता को सौंपने की स्थिति में आ जाए। आगे यह भी प्रस्तुत किया गया कि पक्षकारों का उपरान्त आचरण भी इस परीक्षण में महत्त्वपूर्ण है कि अनुबन्ध में समय मूल तत्व था या नहीं। यह प्रतिपादित किया गया कि वर्तमान प्रकरण में उत्तरदाताओं से छह माह की निर्धारित अवधि समाप्त होने के बहुत पश्चात् अपीलकर्ता संख्या 1 द्वारा धन स्वीकार किया जाना किसी संदेह की गुंजाइश नहीं छोड़ता कि समय मूल तत्व नहीं था; और अनुबन्ध के पालन की अवधि तभी प्रारम्भ होगी जब अपीलकर्ताओं द्वारा वास्तविक भौतिक कब्ज़ा प्राप्त कर लिया गया हो।

23. अपने प्रतिवाद के समर्थन में, उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के निर्णय **गोधरा इलेक्ट्रिसिटी कम्पनी लिमिटेड बनाम गुजरात राज्य, (1975) 1 एस. सी. सी. 199** पर आश्रय किया, जिसके प्रासंगिक अनुच्छेद 11 से 16 हैं; तथा **यूनाइटेड किंगडम के सर्वोच्च न्यायालय** के निर्णय **द कमीशनर्स फ़ॉर हर मैजेस्टीज़ रेवेन्यू ऐंड कस्टम्स बनाम सीक्रेट होटल्स लिमिटेड (पूर्व में मेड होटल्स लिमिटेड), [2014] यू. के. एस. सी. 16, दिनांक 05.03.2014**, के प्रासंगिक

अनुच्छेद 33[1] पर; और **द इंटरप्रिटेशन ऑफ़ कॉन्ट्रैक्ट्स**, सप्तम संस्करण, लेखक सर किम लुइसन, के प्रासंगिक अनुच्छेद 3.189 पर।

विश्लेषण, तर्क एवं निष्कर्ष :

24. विषय का विचार करने पर, इस न्यायालय का मत है कि आक्षेपित निर्णय टिक नहीं सकता। मुख्य प्रश्न इस बात के इर्द–गिर्द घूमता है कि 22.11.1990 दिनांकित अनुबन्ध में उत्तरदाताओं द्वारा समस्त भुगतान किए जाने हेतु कोई निश्चित समय-सीमा उद्घाटित होती है या नहीं; अर्थात् अपीलकर्ता संख्या 1 द्वारा उत्तरदाताओं के पक्ष में संपादित विक्रय अनुबन्ध के उपोद्घातों में क्या यह स्पष्ट है कि पूर्ण परिमाण का भुगतान एक निश्चित अवधि में किया जाना था। निर्विवाद स्थिति यह है कि अनुबन्ध में उल्लिखित समय 22.11.1990 से छह माह का था, अर्थात् 21.05.1991 तक, और उत्तरदाताओं द्वारा अपीलकर्ताओं को 18.11.1997 को भेजे गए विधिक नोटिस के अनुसार निर्धारित अवधि में केवल रुपये 7,000/- का ही भुगतान किया गया था। अनुबन्ध का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि उत्तरदाताओं ने अपीलकर्ताओं को वाद-विवादित संपत्ति के लिए रुपये 21,000/- का भुगतान करने पर सहमति व्यक्त की थी, जिसमें से रुपये 3,000/- अग्रिम धन के रूप में पहले ही दिए जा चुके थे और शेष राशि 6 माह के भीतर अदा की जानी थी। उत्तरदाताओं को अपने व्यय

---

1 *"33. इंग्लैण्ड के विधि में यह स्वीकार्य नहीं है कि किसी लिखित अनुबन्ध की व्याख्या हेतु पक्षकारों के उपरान्त आचरण या उनके उपरान्त दिए गए कथनों को सहायक रूप में ग्रहण किया जाए — देखिए: एफ. एल. शूलर ए. जी. बनाम विक्मन मशीन टूल सेल्स लिमिटेड [1974] ए. सी. 235। तथापि, पक्षकारों का उपरान्त आचरण या कथन अन्य अनेक कारणों से प्रासंगिक हो सकता है। पहला, इन्हें इस प्रतिवाद के समर्थन में प्रयुक्त किया जा सकता है कि लिखित अनुबन्ध वास्तव में एक छलावा था — अर्थात् वह पक्षकारों के संबंधों को नियंत्रित करने के लिए वास्तविक रूप से अभिप्रेत ही नहीं था। दूसरा, लिखित अनुबन्ध में शुद्धिपाठ की मांग के समर्थन में इन्हें उपयोग में लाया जा सकता है। तीसरा, यह दर्शाने के लिए इन पर आश्रय किया जा सकता है कि लिखित अनुबन्ध को बाद में संशोधित कर दिया गया था, या उसे निरस्त कर उसके स्थान पर उपरान्त अनुबन्ध (जो शब्दों या आचरण द्वारा सहमति से बना) कर दिया गया था। चौथा, इस बात की स्थापना हेतु इन पर निर्भर किया जा सकता है कि लिखित अनुबन्ध पक्षकारों के संपूर्ण अनुबन्धीय संबंध का केवल एक भाग ही अभिव्यक्त करता था।"*

पर मुद्रांक-पत्र क्रय करने थे और अपीलकर्ताओं को शेष परिमाण अदा किए जाने के उपरान्त उप-पंजीयक के समक्ष विक्रय विलेख का पंजीकरण उत्तरदाता संख्या 1 के नाम अथवा उनके द्वारा प्रस्तावित नाम से कराना था। यदि अपीलकर्ता विक्रय विलेख पंजीकृत कराने में विफल रहते, तो उत्तरदाता संख्या 1 को शेष विक्रय-परिमाण दीवानी न्यायालय में जमा करने और प्रथम पक्षकार—अर्थात् अपीलकर्ता संख्या 1 से 3—के माध्यम से न्यायालय से ही विक्रय तथा कब्ज़ा प्राप्त करने का अधिकार था।

25. इस अवस्थिति में न्यायालय यह संकेत करता है कि छह माह की अवधि के भीतर उत्तरदाता संख्या 1 पर अपीलकर्ता संख्या 1 को रुपये 18,000/- की संपूर्ण शेष राशि का भुगतान करने का दायित्व विद्यमान था। यह उत्तरदाताओं का भी कथन नहीं है कि उन्होंने छह माह की अवधि समाप्त होने से पूर्व शेष राशि का भुगतान करने का कोई प्रस्ताव भी प्रस्तुत किया था। अतः रुपये 21,000/- में से केवल रुपये 3,000/- का भुगतान किया जाना, अथवा अधिक से अधिक रुपये 7,000/- का भुगतान किया जाना—जो कि अपीलकर्ताओं को भेजे गए उत्तरदाताओं के विधिक पत्र में दर्शाया गया है—स्पष्टतः यह दर्शाता है कि उत्तरदाताओं ने अनुबन्ध के अधीन अपने दायित्व का पालन निर्धारित छह माह की अवधि के भीतर नहीं किया।

26. यहाँ ठहरकर देखे जाने योग्य यह तथ्य है कि अपीलकर्ता संख्या 1 द्वारा 21.04.1997 को रुपये 1,000/- स्वीकार किए जाने—अर्थात् 05.11.1997 को अपीलकर्ता संख्या 7 के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित किए जाने के पश्चात्—के साथ-साथ यह तथ्य भी है कि न्यायवैज्ञानिक विशेषज्ञ ने समय-सीमा समाप्त होने के उपरान्त भुगतान की स्वीकृति हेतु दर्शाए गए दोनों अंगूठा-निशानों को अपीलकर्ता संख्या 1 के वास्तविक अंगुलि-चिह्नों से मेल नहीं खाया पाया। यह स्पष्ट संकेत करता है कि समय-सीमा का विस्तार नहीं हुआ था और इस कारण 1963 अधिनियम के अन्तर्गत उत्तरदाताओं के पक्ष में कोई प्रवर्तनीय अधिकार उत्पन्न नहीं हुआ। सर्वोच्च स्थिति में, यदि यह मान

भी लिया जाए कि अपीलकर्ता संख्या 1 ने समय-सीमा समाप्त होने के पश्चात् उत्तरदाता संख्या 1 से धन स्वीकार किया था—जिसका परीक्षण विचारण स्तर पर तथा प्रथम एवं द्वितीय अपीलीय स्तरों पर निर्णायक रूप से सिद्ध नहीं हुआ—तो उत्तरदाताओं के लिए उपलब्ध उपाय केवल इतना था कि वे चुकाए गए धन की वसूली तथा हानि-पूर्ति या ब्याज की मांग कर सकते थे; परन्तु विक्रय विलेख के निष्पादन हेतु विशिष्टपालन का वाद, वर्तमान परिस्थितियों में, उपलब्ध नहीं था। वर्तमान मामले में यह भी कोई स्पष्टीकरण नहीं है कि उत्तरदाताओं के कथनानुसार रुपये 425/- की अतिरिक्त राशि अपीलकर्ता संख्या 1 को क्यों अदा की गई, जबकि उत्तरदाताओं का विशिष्ट प्रतिवाद यह है कि अपीलकर्ता संपत्ति के कब्ज़े में न होने के कारण कब्ज़ा सौंपने में असमर्थ थे, जिससे विलंब उत्पन्न हुआ। यह प्रतिवेदन कि उत्तरदाताओं पर कोई प्रतिकूल प्रभाव आरोपित नहीं किया जा सकता क्योंकि अपीलकर्ता संख्या 1 को घोषणा एवं कब्ज़ा प्राप्ति की डिक्री 27.04.1996 को ही प्राप्त हुई थी—स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि ऐसा कोई कथन नहीं किया गया कि उक्त डिक्री के अनुपालन में अपीलकर्ता संख्या 1 को वास्तविक कब्ज़ा निष्पादन के माध्यम से प्राप्त भी हो गया था। अतः 27.04.1996 की डिक्री केवल कागज़ी डिक्री ही रह गई, क्योंकि अपीलकर्ता संख्या 1 को वास्तविक कब्ज़ा प्राप्त नहीं हुआ। उत्तरदाताओं का प्रतिवाद आत्मविरोधाभासी हो जाता है, विशेषतः इस दृष्टि से कि कथित कारण-कार्यवाही उक्त डिक्री के पश्चात् उत्पन्न हुई, जबकि वाद दायर किए जाने के समय भी अपीलकर्ता संख्या 1 वास्तविक कब्ज़े में नहीं थीं, फलतः विक्रय विलेख का निष्पादन उस स्थिति में संभव ही नहीं था।

27. एक अन्य महत्त्वपूर्ण पहलू, जिस पर न्यायालय का विचार अपेक्षित है, यह है कि अपीलकर्ता संख्या 7 के पक्ष में वाद-विवादित परिसर के संबंध में विक्रय विलेख संपादित किया जा चुका था, जो किसी भी विधिक नोटिस के प्रेषण अथवा वर्तमान

वाद के संस्थापन से बहुत पूर्व की घटना है, और ऐसे विक्रय विलेख को निरस्त करने की कोई अनुतोष भी नहीं मांगी गई थी। ऐसी स्थिति में उसी संपत्ति के संबंध में विक्रय विलेख के निष्पादन हेतु विशिष्टपालन का वाद विधि की दृष्टि से ग्राह्य ही नहीं हो सकता था। उत्तरदाताओं की स्थिति और भी दुर्बल हो जाती है क्योंकि ऐसी अनुतोष न तो प्रथम अपील के चरण में मांगी गई और न ही द्वितीय अपील के चरण में, जबकि विधि द्वारा ऐसे कदम हेतु अनुमति और प्रावधान दोनों उपलब्ध थे। यहाँ तक कि 18.11.1997 दिनांकित विधिक नोटिस भी उत्तरदाताओं द्वारा दावा किए गए 21.04.1997 को किए गए तथाकथित अंतिम भुगतान—रुपये 1,000/-—के लगभग सात माह बाद ही प्रेषित की गई।

28. महत्त्वपूर्ण यह है कि यद्यपि अपीलकर्ता संख्या 7 को वाद में उत्तरदाता के रूप में प्रतिविष्ट किया गया था, तथापि उनके विक्रय विलेख के निरस्तीकरण की कोई अनुतोष नहीं मांगी गई थी।

29. ***के. एस. विद्यनादम*** (उपरोक्त) में प्रतिपादित सिद्धान्त—जिसमें तथ्यगत स्थिति वर्तमान प्रकरण के समान थी—वर्तमान मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर पूर्णतः लागू होता है, विशेषकर इस प्रश्न पर कि समय अनुबन्ध का मूल तत्व था। और यदि यह माना भी जाए कि समय अनुबन्ध का मूल तत्व नहीं था, तो भी जहाँ भवन में किसी किरायेदार के अस्तित्व का कोई उल्लेख न हो और यह निर्धारित हो कि छह माह की अवधि के भीतर वादकर्ताओं को मुद्रांक-पत्र क्रय कर शेष परिमाण का भुगतान करना है, जिसके उपरान्त प्रतिवादी विक्रय विलेख निष्पादित करेंगे, ऐसी अवस्था में वादकर्ताओं द्वारा प्रतिवादियों को कोई पत्र अथवा नोटिस नहीं भेजा गया जिसमें उनसे यह कहा गया हो कि किरायेदार को खाली कराया जाए और निर्दिष्ट समय-सीमा के भीतर विक्रय विलेख निष्पादित कराया जाए। इसके अतिरिक्त, ***के. एस. विद्यनादम*** (उपरोक्त) में विधिक नोटिस समय-सीमा समाप्त होने के ढाई /पश्चात् जारी की गई

थी, जबकि वर्तमान प्रकरण में विधिक नोटिस छह /से अधिक समय बीत जाने के बाद जारी की गई है। ***के. एस. विघनादम*** (उपरोक्त) के प्रासंगिक अनुच्छेद इस प्रकार हैं:

> "10. *भारत के न्यायालयों ने, कुछ प्रारम्भिक अंग्रेज़ी निर्णयों का अनुसरण करते हुए, निरन्तर यह माना है कि अचल संपत्ति से सम्बन्धित विक्रय अनुबन्ध के मामलों में, जब तक अनुबन्ध में विशेष रूप से ऐसा उपबन्ध न हो, समय अनुबन्ध का मूल तत्व नहीं होता। वाद दायर करने के लिए सीमा अधिनियम द्वारा निर्धारित अवधि तीन /है। इन दोनों परिस्थितियों से यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि प्रत्येक विशिष्टपालन वाद—जिसमें अनुबन्ध में समय को अनुबन्ध का मूल तत्व घोषित करने का कोई विशेष उपबन्ध न हो— सिर्फ इसलिए डिग्री कर दिया जाए कि वह सीमावधि के भीतर दायर किया गया है, चाहे अनुबन्ध में किसी भी पक्ष द्वारा किसी कार्य के संपादन हेतु समय-सीमा निर्धारित की गई हो। ऐसा कहना इस निष्कर्ष पर पहुँचना होगा कि पक्षकारों द्वारा अनुबन्ध में निर्धारित समय-सीमाओं का कोई महत्व या मूल्य नहीं है और वे निरर्थक हैं। क्या यह कहना युक्तियुक्त होगा कि केवल इसलिए कि समय को अनुबन्ध का मूल तत्व नहीं बनाया गया, अनुबन्ध में उल्लिखित समय-सीमाएँ अप्रासंगिक हैं और उन्हें पूर्णतया उपेक्षित किया जा सकता है? यह दृष्टिकोण धारा 10 और धारा 20 द्वारा न्यायालय को प्रदत्त विवेकाधिकार को भी नकार देगा। जैसा कि इस न्यायालय की संविधान पीठ ने चन्द्र रानी बनाम कमल रानी [(1993) 1 एस. सी. सी. 519] में प्रतिपादित किया है* (एस. सी. सी. पृ. 528, अनुच्छेद 25):"

"... यह स्पष्ट है कि *अचल संपत्ति के विक्रय के मामलों में समय को अनुबन्ध का मूल तत्व मानने का कोई अनुमान नहीं लगाया जाता। भले ही समय अनुबन्ध का मूल तत्व न हो, न्यायालय यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि अनुबन्ध का पालन किसी युक्तिसंगत अवधि के भीतर किया जाना चाहिए, यदि निम्नलिखित स्थितियाँ विद्यमान हों : (1) अनुबन्ध की स्पष्ट शर्तों से; (2) संपत्ति के स्वरूप से; और (3) परिवेशगत परिस्थितियों से, उदाहरणार्थ अनुबन्ध किए जाने के उद्देश्य से।"*

"अन्य शब्दों में, न्यायालय को अनुबन्ध में निर्दिष्ट समय–सीमाओं सहित सभी प्रासंगिक परिस्थितियों पर दृष्टि डालनी चाहिए और यह निर्धारित करना चाहिए कि विशिष्टपालन प्रदान करने हेतु उसका विवेकाधिकार प्रयोग किया जाना चाहिए या नहीं। अब भारत में शहरी संपत्तियों के संदर्भ में यह एक सर्वविदित तथ्य है कि गत अनेक दशकों में—विशेषकर /1973 के पश्चात्—उनकी कीमतों में तीव्र वृद्धि हुई है। [यह सर्वविदित तथ्य है कि 1973 के अरब–इज़रायल युद्ध के उपरान्त तेल के मूल्य में असाधारण वृद्धि ने समस्त विश्व में महँगाई की प्रवृत्ति प्रारम्भ कर दी। विशेषतः वे देश प्रभावित हुए जो अपने तेल की अधिकांश आवश्यकता आयात करते थे।] इस मामले में वाद–विवादित संपत्ति मदुरै स्थित एक आवासीय भवन है, जो तमिलनाडु के प्रमुख नगरों में से एक है। वाद–अनुबन्ध दिसम्बर 1978 में संपादित हुआ था और उसमें विक्रय पूर्ण करने हेतु छह माह की अवधि निर्धारित थी, जो 15-6-1979 को समाप्त हो गई। वादी ने वाद–नोटिस 11-7-1981 को जारी की—अर्थात् छह माह की अवधि समाप्त होने के दो /से अधिक समय के पश्चात्। प्रश्न यह है कि इन दो वर्षों से अधिक के अंतराल में वादी कर क्या रहा था? वादी का कथन है कि वह प्रतिवादी संख्या 1 से 3 से निवेदन करता रहा कि किरायेदार को खाली कराएँ और विक्रय

विलेख निष्पादित करें, और प्रतिवादी यह कहते हुए टालते रहे कि किरायेदार भवन खाली नहीं कर रहा। प्रतिवादियों ने इस कथा का खण्डन किया। उनका कहना है कि वादी ने कभी इस विषय में कोई कदम उठाया ही नहीं और न ही उनसे विक्रय विलेख निष्पादित कराने का कोई निवेदन किया। विचारण न्यायालय ने प्रतिवादियों की कथा को स्वीकार किया, जबकि उच्च न्यायालय ने वादी की कथा को स्वीकार किया। पहले यह देखना आवश्यक है कि किसका कथन अधिक संभावित और स्वीकार्य प्रतीत होता है। इस प्रयोजन हेतु हम पहले अनुबन्ध की शर्तों पर दृष्टि डालते हैं। वाद–अनुबन्ध में भवन में किसी किरायेदार के अस्तित्व का कोई उल्लेख नहीं है। अनुबन्ध में यह कहा गया है कि छह माह की अवधि के भीतर वादी मुद्रांक–पत्र क्रय करेगा और शेष परिमाण का भुगतान करेगा, जिसके उपरान्त प्रतिवादी विक्रय विलेख निष्पादित करेंगे; तथा पंजीकरण से पूर्व प्रतिवादी वाद–गृह को खाली कर वादी को कब्ज़ा देंगे। वादी द्वारा प्रतिवादियों को किरायेदार को खाली कराने और विक्रय विलेख निष्पादित कराने हेतु 11-7-1981 की वाद–नोटिस जारी होने तक एक भी पत्र या नोटिस नहीं भेजी गई। यह भी वादी का कथन नहीं है कि उसने छह माह की अवधि के भीतर मुद्रांक–पत्र क्रय किए और शेष परिमाण का भुगतान करने की पेशकश की। प्रतिवादियों का कहना है कि किरायेदार उनका ही संबंधी है, वह किसी भी समय भवन खाली करने को तैयार था, और तथ्य यह कि वादी ने अपनी वाद–नोटिस में उसी किरायेदार के साथ भवन क्रय करने की पेशकश की, स्वयं दर्शाता है कि वादी की कथा असत्य है। किरायेदार को प्रतिवादी ने द्वितीय प्रतिवादी साक्षी (डी. डब्ल्यू. 2) के रूप में परीक्षित किया। उसने कहा कि अनुबन्ध के तुरन्त बाद वह आवास ढूँढने लगा, पर उसे कोई आवास नहीं मिला। इस बीच (अर्थात् अनुबन्ध की छह माह की अवधि समाप्त होने पर) प्रतिवादियों ने उसे कहा कि चूँकि वादी ने अनुबन्ध को त्याग दिया है, अतः उसे खाली करने की आवश्यकता नहीं है। यह भी उतना ही निर्विवाद तथ्य है

कि 15-12-1978 से 11-7-1981 के मध्य वादी ने दो अन्य संपत्तियाँ क्रय कीं। प्रतिवादियों का निरन्तर प्रतिपादित कथन यह रहा है कि मदुरै नगर में आवासीय संपत्तियों की कीमतें तीव्र गति से बढ़ रही थीं, और उक्त ढाई /के अंतराल में कीमतें तीन गुना तक बढ़ गई थीं, और केवल इसी कारण वादी—जिसने पहले वाद–संपत्ति क्रय करने का विचार त्याग दिया था—ढाई /बाद पुनः सक्रिय हुआ और विशिष्टपालन की माँग की। उपरोक्त परिस्थितियों तथा पक्षकारों की मौखिक साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, हम प्रतिवादियों द्वारा प्रस्तुत कथा को स्वीकार करने के लिए प्रवृत्त होते हैं। हम वादी की कथा कि उक्त ढाई /की अवधि में वह बार-बार प्रतिवादियों से किरायेदार को खाली कराने और विक्रय विलेख निष्पादित कराने का अनुरोध करता रहा और प्रतिवादी किरायेदार द्वारा भवन खाली न करने का कारण बताते हुए समय माँगते रहे—को अस्वीकार करते हैं। उपरोक्त निष्कर्ष का अर्थ यह है कि 15-12-1978 से 11-7-1981 तक—अर्थात् ढाई /से अधिक की अवधि तक—वादी अनुबन्ध के अधीन अपने दायित्वों के पालन हेतु कोई भी कदम उठाए बिना निष्क्रिय बैठा रहा; जबकि अनुबन्ध में छह माह की अवधि निर्दिष्ट थी जिसमें उसे मुद्रांक–पत्र क्रय कर शेष परिमाण देना था और प्रतिवादियों को विक्रय विलेख निष्पादित कर संपत्ति का कब्ज़ा सौंपने हेतु कहना था। हम प्रतिवादियों की इस दलील को स्वीकार करने की ओर प्रवृत्त होते हैं कि मदुरै नगर में आवासीय संपत्तियों के मूल्यों में तीव्र वृद्धि हो रही थी और सम्भवतः इसी कारण वादी ढाई /बाद जागृत हुआ और विशिष्टपालन की मांग की।"

11. श्री शिवसुबरमण्यम ने मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय एस. वी. शंकरलिंग नादर बनाम पी. टी. एस. रत्नस्वामी नादर [ए आइ आर 1952 मद्रास 389 : (1952) 1 एम. एल. जे. 44] का हवाला दिया, जिसमें यह प्रतिपादित किया गया था कि मात्र मूल्य–वृद्धि विशिष्टपालन से इनकार करने का आधार नहीं हो सकती। पूर्ण सम्मान के साथ, यदि उक्त निर्णय का अर्थ यह लिया जाए कि न्यायालय को प्रदत्त विवेकाधिकार

का प्रयोग करते समय इस कारक को बिल्कुल भी ध्यान में नहीं रखा जा सकता, तो हम उससे सहमत नहीं हो सकते। हम वास्तविकता से आँखें नहीं मूँद सकते—और वास्तविकता यह है कि शहरी संपत्तियों के मूल्यों में निरन्तर और सतत वृद्धि हो रही है—जो ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों की ओर जन–प्रवास तथा महँगाई से और अधिक प्रबल हुई है। उदाहरण के लिए इस मामले को ही लें। वादी ने यह स्वीकार किया था कि वह शेष परिमाण का भुगतान करेगा, मुद्रांक–पत्र खरीदेगा और छह माह की अवधि के भीतर विक्रय विलेख के निष्पादन तथा कब्ज़ा सौंपने का अनुरोध करेगा। उसने ऐसा कुछ भी नहीं किया। अनुबन्ध में स्पष्ट रूप से यह उपबन्ध है कि यदि वादी अनुबन्ध के अपने दायित्वों का पालन करने में विफल रहता है, तो प्रतिवादियों को रुपये 5000/- की अग्रिम धन–राशि राजसात करने का अधिकार होगा; और यदि प्रतिवादी अपने दायित्वों का पालन करने में विफल रहते हैं, तो वे उक्त राशि का दोगुना भुगतान करने के लिए बाध्य होंगे। वादी ने कुल परिमाण रुपये 60,000/- में से केवल रुपये 5000/- का नाममात्र भुगतान ही किया और अनुबन्ध के ढाई /बाद वाद–नोटिस जारी करने तक उसने कोई कदम नहीं उठाया। वास्तव में, हमारा मत इस ओर दृढ़ होता है कि न्यायालयों द्वारा प्रतिपादित यह कठोर नियम—कि अचल संपत्ति के मामलों में समय अनुबन्ध का मूल तत्व नहीं होता—जो उस समय विकसित हुआ था जब मूल्य स्थिर थे और महँगाई का अस्तित्व नहीं था—शहरी अचल संपत्तियों के मामलों में शिथिल किया जाना चाहिए, यदि परिवर्तित नहीं किया जाए। अब समय आ गया है कि ऐसा किया जाए। वादी के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि जब पक्षकारों ने अनुबन्ध किया, तब वे मूल्य–वृद्धि की प्रवृत्ति से परिचित थे; अतः उनके अनुसार मूल्य–वृद्धि विशिष्टपालन से इनकार का आधार नहीं बन सकती। हो सकता है पक्षकार उक्त परिस्थिति से परिचित हों, परन्तु उन्होंने यह भी छह माह की निर्धारित अवधि तय की थी जिसके भीतर लेन–देन पूर्ण किया जाना

था। यह समय–सीमा भले ही समय को अनुबन्ध का मूल तत्व न बनाती हो, परन्तु इसका कुछ न कुछ अर्थ अवश्य है। यह बिना कारण निर्धारित नहीं की गई होगी। क्या यह विधि का नियम या सावधानी का सिद्धान्त माना जा सकता है कि जहाँ समय को अनुबन्ध का मूल तत्व न बनाया गया हो, वहाँ अनुबन्ध में निर्धारित सभी समय–सीमाएँ निरर्थक होंगी, या उनका कोई अस्तित्व ही न माना जाए? इसका तात्पर्य इतना ही है कि जब न्यायालय अपना विवेकाधिकार प्रयोग करे, तो उसे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जब पक्षकार किसी समय–सीमा को किसी कदम के लिए निर्धारित करते हैं, तो उसका कोई न कोई महत्त्व अवश्य होता है, और केवल इस आधार पर कि समय को अनुबन्ध का मूल तत्व नहीं बनाया गया (अचल संपत्तियों के मामलों में), उन समय–सीमाओं को पूर्णतः उपेक्षित नहीं किया जा सकता।"

XXX

13. *हमारे समक्ष प्रस्तुत मामले में यह केवल विलंब का मामला नहीं है। यह वादी की ओर से ढाई /तक पूर्ण निष्क्रियता का मामला है, जो अनुबन्ध की उन शर्तों का प्रत्यक्ष उल्लंघन है जिनके अनुसार उसे छह माह की अवधि के भीतर शेष परिमाण का भुगतान करना था, मुद्रांक–पत्र खरीदने थे और तत्पश्चात् विक्रय विलेख के निष्पादन का अनुरोध करना था। इसके अतिरिक्त, इस विलंब के साथ–साथ मूल्यों में भी पर्याप्त वृद्धि हुई—प्रतिवादियों के अनुसार, तीन गुना—जो अनुबन्ध की तिथि और वाद–नोटिस की तिथि के बीच हुई। इस विलंब ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है कि वादी को विशिष्टपालन का अनुतोष प्रदान करना न्यायसंगत नहीं होगा।"*

(ज़ोर दिया गया)

30. उत्तरदाताओं द्वारा जिन निर्णयों पर उनके प्रतिवाद के समर्थन में आश्रय किया गया है —जो पक्षकारों के आचरण से सम्बन्धित हैं—वर्तमान परिस्थितियों में उनके किसी काम के नहीं हैं, क्योंकि यदि यह मान भी लिया जाए कि उत्तरदाताओं द्वारा

अपीलकर्ताओं को किए गए उपरान्त भुगतान सत्य हैं, तो भी वे अत्यधिक अन्तराल पर किए गए थे और न तो शेष परिमाण अदा करने की कोई इच्छा प्रदर्शित की गई, और न ही आवश्यक मुद्रांक–पत्र पर विक्रय विलेख तैयार कराकर अपीलकर्ताओं को उसे निष्पादित करने हेतु कोई नोटिस दी गई। ऐसी स्थिति में, यह नहीं कहा जा सकता कि वर्तमान मामले में—विशेषतः अपीलकर्ताओं के आचरण के परीक्षण की कसौटी पर—समय अनुबन्ध का मूल तत्व नहीं था।

31. उपरोक्त कारणों से, उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय तथा प्रथम अपीलीय न्यायालय का निर्णय—दोनों—निरस्त किए जाते हैं। विचारण न्यायालय का निर्णय/आदेश पुनर्जीवित तथा बहाल किया जाता है।

32. तदनुसार अपील की अनुमति दी जाती है।

33. तथ्यों और परिस्थितियों में, लागत के बारे में कोई आदेश प्रस्तावित नहीं है।

निर्णय सार लेखन : निधि जैन *वाद का परिणाम* : अपील स्वीकृत।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।